राजस्थान की ऊर्वरा भूमि में जैन संस्कृति एवं साहित्य का जो अंकुरण एवं पल्लवन हुआ, उसके अमृत फलों से सम्पूर्ण भारत एवं विश्व लाभान्वित होता रहा है।

प्रस्तुत में प्राकृत भाषा के श्वेताम्बर साहित्यकारों का अधुनातन परिचय दिया गया है।

☐ श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री

राजस्थान के प्राकृत श्वेताम्बर साहित्यकार

☐

भारतीय इतिहास में राजस्थान का गौरवपूर्ण स्थान सदा से रहा है। राजस्थान की धरती के कण-कण में जहाँ वीरता और शौर्य अंगड़ाई ले रहा है, वहाँ साहित्य और संस्कृति की सुमधुर स्वर लहरियाँ भी झनझना रही हैं। राजस्थान के रण-बांकुरे वीरों ने अपनी अनूठी आन-बान और शान की रक्षा के लिए हँसते हुए जहाँ बलिदान दिया है, वहाँ वैदिक-परम्परा के भावुक भक्त-कवियों ने व श्रमण संस्कृति के श्रद्धालु श्रमणों ने मौलिक व चिन्तन-प्रधान साहित्य सृजन कर अपनी प्रताप पूर्ण प्रतिभा का परिचय भी दिया है। रणथम्भौर, कुम्भलगढ़, चित्तौड़, भरतपुर, मांडोर, जालोर जैसे विशाल दुर्ग जहाँ उन वीर और वीराङ्गनाओं की देश-भक्ति की गौरव-गाथा को प्रस्तुत करते हैं, वहाँ जैसलमेर, नागोर, बीकानेर, जोधपुर, जयपुर अजमेर, आमेर, डुंगरपुर प्रभृति के विशाल ज्ञान-भंडार साहित्य-प्रेमियों के साहित्यानुराग को अभिव्यञ्जित करते हैं।

राजस्थान की पावन-पुण्य भूमि अनेकानेक मूर्धन्य विद्वानों की जन्मस्थली एवं साहित्य-निर्माण स्थली रही है। उन प्रतिभा-मूर्ति विद्वानों ने साहित्य की विविध विधाओं में विपुल साहित्य का सृजन कर अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य का परिचय दिया है। उनके सम्बन्ध में संक्षेप रूप में भी कुछ लिखा जाय, तो एक विराट्काय ग्रन्थ तैयार हो सकता है, मुझे उन सभी राजस्थानी विद्वानों का परिचय नहीं देना है, किन्तु श्वेताम्बर परम्परा के प्राकृत साहित्यकारों का अत्यन्त संक्षेप में परिचय प्रस्तुत करना है। श्रमण संस्कृति का श्रमण घुमक्कड़ है, हिमालय से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक पैदल घूम-घूमकर जन-जन के मन में आध्यात्मिक, धार्मिक व सांस्कृतिक जागृति उद्बुद्ध करता रहता है। उसके जीवन का चरम व परम लक्ष्य स्व-कल्याण के साथ-साथ पर-कल्याण भी रहा है। स्वान्तःसुखाय एवं बहुजन-हिताय साहित्य का सृजन भी करता रहा है।

श्रमणों के साहित्य को क्षेत्र विशेष की संकीर्ण सीमा में आबद्ध करना मैं उचित नहीं मानता। क्योंकि श्रमण किसी क्षेत्र विशेष की धरोहर नहीं है। कितने ही श्रमणों की जन्म-स्थली राजस्थान रही है, साहित्य-स्थली गुजरात रही है। कितनों की ही जन्म-स्थली गुजरात है, तो साहित्य-स्थली राजस्थान। कितने ही साहित्यिकों के सम्बन्ध में इतिहास वेत्ता संदिग्ध हैं, कि वे कहाँ के हैं, और कितनी ही कृतियों के सम्बन्ध में भी प्रशस्तियों के अभाव में निर्णय नहीं हो सका कि वे कहाँ पर बनाई गई हैं। प्रस्तुत निबन्ध में मैं उन साहित्यकारों का परिचय दूँगा जिनकी जन्म-स्थली राजस्थान रही है या जिनकी जन्म-स्थली अन्य होने पर भी अपने ग्रन्थ का प्रणयन जिन्होंने राजस्थान में किया है।

श्रमण-संस्कृति के श्रमणों की यह एक अपूर्व विशेषता रही है कि अध्यात्म की गहन साधना करते हुए भी उन्होंने प्रान्तवाद, भाषावाद और सम्प्रदायवाद को विस्मृत कर विस्तृत साहित्य की साधना की है। उन्होंने स्वयं एकचित होकर हजारों ग्रन्थ लिखे हैं, साथ ही दूसरों को भी लिखने के लिए उत्प्रेरित किया है। कितने ही ग्रन्थों के अन्त में ऐसी प्रशस्तियाँ उपलब्ध होती हैं, जिनमें अध्ययन-अध्यापन की लिखने-लिखाने की प्रबल प्रेरणा प्रदान की गई है। जैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो पढ़इ पढावई एक चित्तु,
सइ लिहइ लिहावइ जो णिरत्तु,
आयरण्णं भण्णइं सो पसत्थु।
परिभावइ अहिणिसु एउ सत्थु ॥[१]

आचार्य हरिभद्र

हरिभद्रसूरि राजस्थान के एक ज्योतिर्धर नक्षत्र थे। उनकी प्रबल प्रतिभा से भारतीय साहित्य जगमगा रहा है, उनके जीवन के सम्बन्ध में सर्वप्रथम उल्लेख कहावली में प्राप्त होता है। इतिहासवेत्ता उसे विक्रम की १२वीं शती के आस-पास की रचना मानते हैं। उसमें हरिभद्र की जन्मस्थली के सम्बन्ध में 'पिवंगुई बंभपुणी' ऐसा वाक्य मिलता है।[२] जबकि अन्य अनेक स्थलों पर चित्तौड़-चित्रकूट का स्पष्ट उल्लेख है।[३] पंडित प्रवर सुखलाल जी का अभिमत है, कि 'बंभपुणी' ब्रह्मपुरी चित्तौड़ का ही एक विभाग रहा होगा, अथवा चित्तौड़ के सन्निकट का कोई कस्बा होगा।[४] उनकी माता का नाम गंगा और पिता का नाम शंकरभट्ट था।[५] सुमतिगणि ने गणधर सार्धशतक में हरिभद्र की जाति ब्राह्मण बताई है।[६] प्रभावक चरित में उन्हें पुरोहित कहा गया है।[७] आचार्य हरिभद्र के समय के सम्बन्ध में विद्वानों में विभिन्न मत थे, किन्तु पुरातत्त्ववेत्ता मुनि श्री जिनविजय जी ने प्रबल प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया है कि वीर संवत् ७५७ से ८२७ तक उनका जीवन काल है अब इस सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का मतभेद नहीं रहा है।[८] उन्होंने व्याकरण, न्याय, धर्मशास्त्र और दर्शन का गम्भीर अध्ययन कहाँ पर किया था, इसका उल्लेख नहीं मिलता है। वे एक बार चित्तौड़ के मार्ग से जा रहे थे, उनके कानों में एक गाथा पड़ी।[९]

गाथा प्राकृत भाषा की थी। संक्षिप्त और संकेतपूर्ण अर्थ लिए हुए थी। अतः उसका मर्म उन्हें समझ में नहीं आया। उन्होंने गाथा का पाठ करने वाली साध्वी से उस गाथा के अर्थ को जानने की जिज्ञासा व्यक्त की। साध्वी ने अपने गुरु जिनदत्त का परिचय कराया। प्राकृत साहित्य और जैन-परम्परा का प्रामाणिक और गम्भीर अभ्यास करने के लिए उन्होंने जैनेन्द्रीदीक्षा धारण की और उस साध्वी के प्रति अपने हृदय की अनन्त श्रद्धा को स्वयं को उनका धर्मपुत्र बताकर व्यक्त की है।[१०] वे गृहस्थाश्रम में संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित थे। श्रमण बनने पर प्राकृत-भाषा का गहन अध्ययन किया। दशवैकालिक, आवश्यक, नन्दी, अनुयोगद्वार, प्रज्ञापना, ओघनिर्युक्ति, चैत्य-वन्दन, जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति, जीवाभिगम और पिण्ड निर्युक्ति आदि आगमों पर संस्कृत भाषा में टीकाएँ लिखीं। आगम साहित्य के वे प्रथम टीकाकार हैं। अष्टक प्रकरण, धर्मबिन्दु, पञ्चसूत्र, व्याख्या भावनासिद्धि, लघुक्षेत्र, समासवृत्ति, वर्ग केवली सूत्रवृत्ति, हिंसाष्टक, अनेकान्त जय पताका, अनेकान्तवाद प्रवेश, अनेकान्तसिद्धि, तत्त्वार्थसूत्र लघुवृत्ति, द्विज वदन चपेटा, न्याय-प्रवेश टीका, न्यायावतार वृत्ति, लोकतत्त्व निर्णय, शास्त्रवार्ता समुच्चय, सर्वज्ञ सिद्धि, षड्दर्शन समुच्चय, स्याद्वाद कुचोध परिहार योगदृष्टि समुच्चय, योगबिन्दु, षोडशक प्रकरण वीरस्तव, संसार दावानल स्तुति प्रभृति अनेक मौलिक ग्रन्थ उन्होंने संस्कृत भाषा में रचे हैं। प्राकृत भाषा में भी उन्होंने विपुल साहित्य का सृजन किया है। संस्कृतवत ही प्राकृत-भाषा पर भी उनका पूर्ण अधिकार था। उन्होंने धर्म, दर्शन, योग, कथा, ज्योतिष और स्तुति प्रभृति सभी विषयों में प्राकृत भाषा में ग्रन्थ लिखे हैं। जैसे—उपदेशपद, पञ्चवस्तु, पंचाशक, वीस विशिकाएँ, श्रावक धर्मविधि प्रकरण, सम्बोध प्रकरण, धर्म संग्रहणी योगविंशिका, योगशतक, धूर्ताख्यान समराइच्च कहा, लग्नशुद्धि, लग्नकुंडलियाँ आदि।

समराइच्च कहा प्राकृत भाषा की सर्वश्रेष्ठ कृति है। जो स्थान संस्कृत साहित्य में कादम्बरी का है वही स्थान प्राकृत में 'समराइच्च कहा' का है। यह ग्रन्थ जैन महाराष्ट्री प्राकृत में लिखा गया है, अनेक स्थलों पर शोरसेनी भाषा का भी प्रभाव है।

'धुत्तक्खाण' हरिभद्र की दूसरी उल्लेखनीय रचना है। निशीथ चूर्णि की पीठिका में धूर्ताख्यान की कथाएँ संक्षेप में मिलती हैं। जिनदासगणि महत्तर ने वहाँ यह सूचित किया है, कि विशेष जिज्ञासु 'धूर्ताख्यान' में देखें। इससे यह स्पष्ट है कि जिनदासगणि के सामने 'धूत्ताक्खाण' की कोई प्राचीन रचना रही होगी जो आज अनुपलब्ध है। आचार्य हरिभद्र ने निशीथ चूर्णि के आधार से प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है। ग्रन्थ में पुराणों में वर्णित अतिरञ्जित कथाओं पर करारे व्यंग्य करते हुए उसकी अयथार्थता सिद्ध की है।

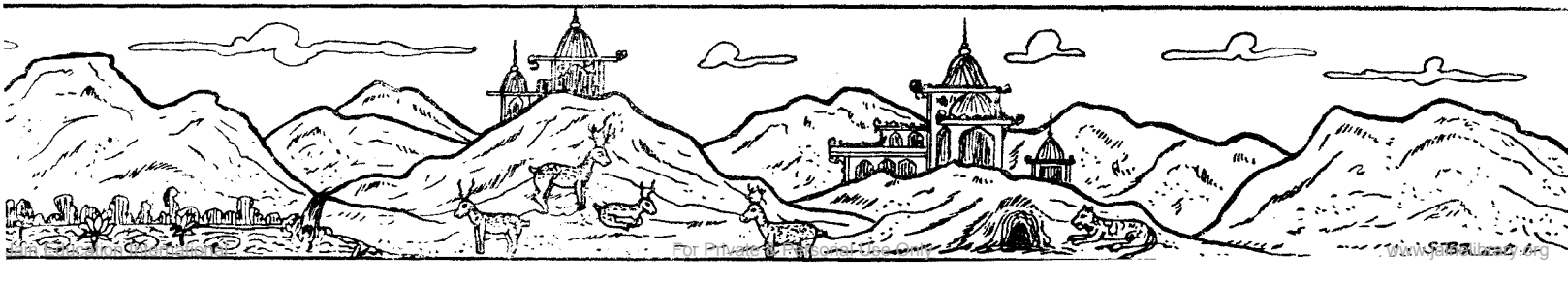

For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

भारतीय कथा साहित्य में शैली की दृष्टि से इसका मूर्धन्य स्थान है। लाक्षणिक शैली में इस प्रकार की अन्य कोई भी रचना उपलब्ध नहीं होती, यह साधिकार कहा जा सकता है कि व्यङ्गोपहास की इतनी श्रेष्ठ रचना किसी भी भाषा में नहीं है। धूर्तों का व्यंग्य प्रहार ध्वंसात्मक नहीं अपितु निर्माणात्मक है।

कहा जाता है कि आचार्य हरिभद्र में १४४४ ग्रन्थों की रचना की थी। किन्तु वे सभी ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं हैं। डॉ० हर्मन जेकोबी, लॉयमान विन्टर्नित्स, प्रो० सुवाली और सुब्रिंग प्रभृति अनेक पाश्चात्य विचारकों ने हरिभद्र के ग्रन्थों का सम्पादन और अनुवाद भी किया है।[१२] उनके सम्बन्ध में प्रकाश भी डाला है। जिससे भी उनकी महानता का सहज ही पता लग सकता है।

उद्योतनसूरि

उद्योतनसूरि श्वेताम्बर परम्परा के एक विशिष्ट मेधावी सन्त थे। उनका जीवनवृत्त विस्तार से नहीं मिलता—उन्होंने वीरभद्रसूरि से सिद्धान्त की शिक्षा प्राप्त की थी और हरिभद्र सूरि से युक्ति शास्त्र की। कुवलयमाला प्राकृत साहित्य का उनका एक अनुपम ग्रन्थ है।[१३] गद्य-पद्य मिश्रित महाराष्ट्री प्राकृत की यह प्रसाद पूर्ण रचना चम्पू शैली में लिखी गई है। महाराष्ट्री प्राकृत के साथ इसमें पैशाची अपभ्रंश व देशी भाषाओं के साथ कहीं-कहीं पर संस्कृत भाषा का भी प्रयोग हुआ है। प्रेम और शृंगार के साथ वैराग्य का भी प्रयोग हुआ है। सुभाषित मार्मिक प्रश्नोत्तर प्रहेलिका आदि भी यत्र-तत्र दिखलाई देती है। जिससे लेखक के विशाल अध्ययन व सूक्ष्म दर्शन का पता लगता है। ग्रन्थ पर बाण की कादम्बरी, त्रिविक्रम की दमयन्ती कथा और हरिभद्रसूरि के 'समराइच्च कहा' का स्पष्ट प्रभाव है। प्रस्तुत ग्रन्थ लेखक ने ई० सन् ७७९ में जावालिपुर जिसका वर्तमान में 'जालोर' नाम है, वहाँ पर पूर्ण किया है।[१४]

जिनेश्वरसूरि

जिनेश्वर सूरि के नाम से जैन सम्प्रदाय में अनेक प्रतिभा-सम्पन्न आचार्य हुए हैं। प्रस्तुत आचार्य का उल्लेख धनेश्वरसूरि[१५] अभयदेव[१६] और गुणचन्द्र[१७] ने युगप्रधान के रूप में किया है। जिनेश्वर सूरि का मुख्य रूप से विहार स्थल राजस्थान, गुजरात और मालवा रहा है। इन्होंने संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं में रचनाएँ की। उसमें हरिभद्रकृत अष्टक पर वृत्ति, पंचलिंगी प्रकरण, वीरचरित्र, निर्वाण लीलावती कथा, षट्स्थानक प्रकरण और कहाणय कोष मुख्य है। कहाणय कोष में ३० गाथाएँ हैं और प्राकृत में टीका हैं। जिसमें छत्तीस प्रमुख कथाएँ हैं। कथाओं में उस युग की समाज, राजनीति और आचार-विचार का सरस चित्रण किया गया है। समासयुक्त पदावली अनावश्यक शब्द-आडम्बर और अलंकारों की भरमार नहीं है। कहीं-कहीं पर अपभ्रंश भाषा का प्रयोग हुआ है। उनकी निर्वाण लीलावती कथा भी प्राकृत भाषा की श्रेष्ठ रचना है। उन्होंने यह कथा स० १०८२ और १०९५ के मध्य में बनाई है। पद-लालित्य, श्लेष और अलंकारों से यह विभूषित है। प्रस्तुत ग्रन्थ का श्लोकबद्ध संस्कृत भाषान्तर जैसलमेर के भण्डार में उपलब्ध हुआ है। मूलकृति अभी तक अनुपलब्ध है। प्राकृत भाषा में उनकी एक अन्य रचना 'गाथाकोष' भी मिलती है।

महेश्वरसूरि

महेश्वर सूरि प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। वे संस्कृत-प्राकृत के प्रकाण्ड पंडित थे। इनका समय ई० सन् १०५२ से पूर्व माना गया है। 'णाणपञ्चमी कहा[१८] इनकी एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें देशी शब्दों का अभाव है। भाषा में लालित्य है यह प्राकृत भाषा का श्रेष्ठ काव्य है। महेश्वर सूरि सज्जन उपाध्याय के शिष्य थे।[१९]

जिनदत्तसूरि

जिनचन्द्र जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। अपने लघु गुरुबन्धु अभयदेव की अभ्यर्थना को सम्मान देकर संवेग रंगशाला नामक ग्रन्थ की रचना की। रचना का समय वि० सं० ११२५ है। नवाङ्गी टीकाकार अभयदेव के शिष्य जिन वल्लभसूरि ने प्रस्तुत ग्रन्थ का संशोधन किया। संवेगभाव का प्रतिपादन करना ही ग्रन्थ का उद्देश्य रहा है। ग्रन्थ में सर्वत्र शान्तरस छलक रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनप्रभसूरि

जिनप्रभसूरि ये विलक्षण प्रतिभा के धनी आचार्य थे। इन्होंने १३२६ में जैन दीक्षा ग्रहण की और आचार्य जिनसिंह ने इन्हें योग्य समझकर १३४१ में आचार्य पद प्रदान किया। दिल्ली का सुलतान मुहम्मद तुगलक बादशाह इनकी विद्वत्ता और इनके चमत्कारपूर्ण कृत्यों से अत्यधिक प्रभावित था। इनके जीवन की अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। 'कातन्त्रविभ्रमवृत्ति, श्रेणिकचरित्र द्वयाश्रयकाव्य', 'विधिमार्गप्रपा' आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की। विधिप्रपाप्राकृत साहित्य का एक सुन्दर ग्रन्थ है श्रीयुत् अगरचन्द जी नाहटा का अभिमत है, कि ७०० स्तोत्र भी इन्होंने बनाये। वे स्तोत्र संस्कृत, प्राकृत देश्य भाषा के अतिरिक्त भाषा में भी लिखे हैं। वर्तमान में इनके ५५ स्तोत्र उपलब्ध होते हैं।[२०]

नेमिचन्द्रसूरि

नेमिचन्द्रसूरि ये बृहद्गच्छीय उद्योतन सूरि के प्रशिष्य थे और आम्रदेव के शिष्य थे। आचार्य पद प्राप्त करन के पूर्व इनका नाम देवेन्द्रगणि था। 'महावीर चरियं' इनकी पद्यमयी रचना है। वि. सं. ११४१ में इन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की। इनके अतिरिक्त 'अक्खाणयमणिकोस' (मूल) उत्तराध्ययन की संस्कृत टीका, आत्मबोधकुलकप्रभृति इनकी रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

गुणपालमुनि

गुणपालमुनि श्वेताम्बर परम्परा के नाइलगच्छीय वीरभद्रसूरि के शिष्य अथवा प्रशिष्य थे। 'जम्बुचरियं' इनकी श्रेष्ठ रचना है।[२१] ग्रन्थ की रचना कब की इसका संकेत ग्रन्थकार ने नहीं किया है, किन्तु ग्रन्थ के सम्पादक मुनि श्री जिनविजयजी का अभिमत है कि ग्रन्थ ग्यारहवीं शताब्दी में या उससे पूर्व लिखा गया है। जैसलमेर के भण्डार से जो प्रति उपलब्ध हुई है वह प्रति १४वीं शताब्दी के आसपास की लिखी हुई है।

जम्बूचरियं की भाषा सरल और सुबोध है। सम्पूर्ण ग्रन्थ गद्य-पद्य मिश्रित है। इस पर 'कुवलयमाला' ग्रन्थ का सीधा प्रभाव है। यह एक ऐतिहासिक सत्य तथ्य है कि कुवलयमाला के रचयिता उद्योतनसूरि ने सिद्धान्तों का अध्ययन वीरभद्र नाम के आचार्य के पास किया था। उन्होंने वीरभद्र के लिये लिखा 'दिन्नजहिच्छियफलओ अवरो कप्परूक्खोव्व' गुणपाल ने अपने गुरु प्रद्युम्नसूरि को वीरभद्र का शिष्य बतलाया है। गुणपाल ने भी 'परिचिंतियदिन्नफलो आसी सो कप्परूक्खो' ऐसा लिखा है, जो उद्योतन सूरि के वाक्य प्रयोग के साथ मेल खाता है। इससे यह स्पष्ट है कि उद्योतन सूरि के सिद्धान्त गुरु वीरभद्राचार्य और गुणपालमुनि के प्रगुरु वीरभद्रसूरि ये दोनों एक ही व्यक्ति होंगे। यदि ऐसा ही है, तो गुणपालमुनि का अस्तित्व विक्रम की ९वीं शताब्दी के आसपास है।

गुणपाल मुनि की दूसरी रचना 'रिसिकन्ताचरियं' है। जिसकी अपूर्ण प्रति भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिर पूना में है।

समयसुन्दरगणि

ये एक वरिष्ठ मेधावी सन्त थे। तर्क, व्याकरण साहित्य के ये गम्भीर विद्वान् थे। उनकी अद्भुत प्रतिभा को देखकर बड़े-बड़े विद्वानों की अँगुली भी दाँतों तले लग जाती थी। संवत् १६४९ की एक घटना है—बादशाह अकबर ने कश्मीर पर विजय वैजयन्ती फहराने के लिये प्रस्थान किया। प्रस्थान के पूर्व विशिष्ट विद्वानों की एक सभा हुई। समय सुन्दर जी ने उस समय विद्वानों के समक्ष एक अद्भुत ग्रन्थ उपस्थित किया। उस ग्रन्थ के सामने आज दिन तक कोई भी ग्रन्थ ठहर नहीं सका है। 'राजानो ददते सौख्यम्' इस संस्कृत वाक्य के आठ अक्षर हैं, और एक-एक अक्षर के एक-एक लाख अर्थ किये गये हैं। बादशाह अकबर और अन्य सभी विद्वान् प्रतिभा के इस अनूठे चमत्कार को देखकर नत-मस्तक हो गये। अकबर कश्मीर विजय कर जब लौटा, तो अनेक आचार्यों एवं साधुओं का उसने सम्मान किया। उनमें एक समयसुन्दरजी भी थे। उन्हें वाचक पद प्रदान किया गया। इन्होंने वि. सं. १६८६ ई. सन् १६२९ में 'गाथा सहस्री'

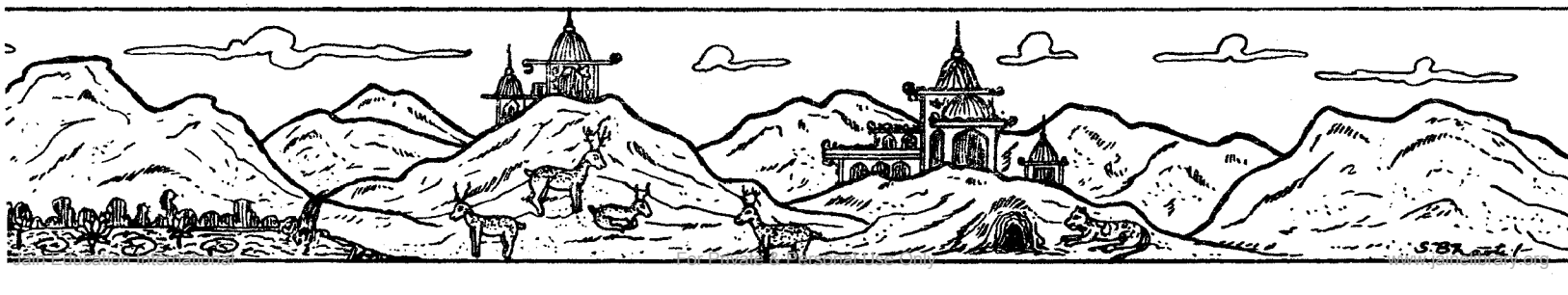

ग्रन्थ का संग्रह किया। इस ग्रन्थ पर एक टिप्पण भी है पर, उसके कर्ता का नाम ज्ञात नहीं हो सका है। इसमें आचार्य के छत्तीस गुण, साधुओं के गुण, जिनकल्पिक के उपकरण, यति दिनचर्या, साढ़े पच्चीस आर्य देश, ध्याता का स्वरूप, प्राणायाम, बत्तीस प्रकार के नाटक, सोलह शृंगार, शकुन और ज्योतिष आदि विषयों का सुन्दर संग्रह है। महा निशीथ, व्यवहार भाष्य, पुष्पमाला वृत्ति आदि के साथ ही महाभारत, मनुस्मृति आदि संस्कृत के ग्रन्थों से भी यहाँ पर श्लोक उद्धृत किये गये हैं।

ठक्कुर फेरू

ठक्कुर फेरू ये राजस्थान के कन्नाणा के निवासी श्वेताम्बर श्रावक थे। इनका समय विक्रम की १४वीं शती है। ये श्रीमाल वंश के धोंधिया (धंधकुल) गोत्रीय श्रेष्ठी कालिम या कलश के पुत्र थे। इनकी सर्वप्रथम रचना युग-प्रधान चतुष्पादिका है, जो संवत् १३४७ में वाचनाचार्य राजशेखर के समीप अपने निवास-स्थान कन्नाणा में बनाई थी। इन्होंने अपनी कृतियों के अन्त में अपने आपको 'परम जैन' और जिणंदपय भत्तो' लिखकर अपना कट्टर जैनत्व बताने का प्रयास किया है। 'रत्न परीक्षा' में अपने पुत्र का नाम 'हेमपाल' लिखा है। जिसके लिए प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की गयी है। इनके भाई का नाम ज्ञात नहीं हो सका है।

दिल्ली पति सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के राज्याधिकारी या मन्त्रिमण्डल में होने से इनको बाद में अधिक समय दिल्ली रहना पड़ा। इन्होंने 'द्रव्य परीक्षा' दिल्ली की टंकसाल के अनुभव के आधार पर लिखी। गणित सार में उस युग की राजनीति पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। गणित प्रश्नावली से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये शाही दरबार में उच्च पदासीन व्यक्ति थे। इनकी सात रचनाएँ प्राप्त होती हैं, जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। जिनका सम्पादन मुनिश्री जिनविजयजी ने 'रत्नपरीक्षादि सप्त ग्रन्थ संग्रह[२२] के नाम से किया है। युग प्रधान चतुष्पादिका तत्कालीन लोकभाषा चौपाई व छप्पय में रची गई है, और शेष सभी रचनाएँ प्राकृत में हैं। भाषा सरल व सरस है, उस पर अपभ्रंश का प्रभाव है।

जर्यासिहसूरि

"धर्मोपदेश माला विवरण"[२३] जर्यासिह सूरि की एक महत्त्वपूर्ण कृति है, जो गद्य-पद्य मिश्रित है। यह ग्रन्थ नागोर में बनाया था।[२४]

वाचक कल्याण तिलक

वाचक कल्याण तिलक ने छप्पन गाथाओं में कालकाचार्य की कथा लिखी।[२५]

हीरकलशमुनि

हीरकलश मुनि ने संवत् १६२१ में 'जोइस-हीर' ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ ज्योतिष की गहराई को प्रकट करता है।[२६]

मानदेवसूरि

मानदेवसूरि का जन्म नाडोल में हुआ। उनके पिता का नाम धनेश्वर व माता का नाम धारिणी था। इन्होंने 'शांतिस्तव और तिजयपहुत्त' नामक स्तोत्र की रचना की।[२७]

नेमिचन्दजी भण्डारी

नेमिचन्दजी भण्डारी ने प्राकृत भाषा में 'षष्टिशतक प्रकरण' जिनवल्लभ सूरि गुण वर्णन एवं पार्श्वनाथ स्तोत्र आदि रचनाएँ बनाई हैं।[२८]

स्थानकवासी मुनि

राजस्थानी स्थानकवासी मुनियों ने भी प्राकृत भाषा में अनेक ग्रन्थों की रचनाएँ की हैं। किन्तु साधनाभाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से उन सभी ग्रन्थकारों का परिचय देना सम्भव नहीं है। श्रमण हजारीमल जिनकी जन्मस्थली मेवाड़ थी, उन्होंने 'साहु गुणमाला' ग्रन्थ की रचना की थी। जयमल सम्प्रदाय के मुनि श्री चैनमलजी ने भी श्रीमद् गीता का प्राकृत में अनुवाद किया था। पण्डित मुनि श्री लालचन्दजी 'श्रमणलाल' ने भी प्राकृत में अनेक स्तोत्र आदि बनाए हैं। पं० फूलचन्द्रजी महाराज 'पुप्फ भिक्खु' ने सुत्तागमे का सम्पादन किया और अनेक लेख आदि प्राकृत में लिखे हैं। राजस्थान केसरी पण्डित प्रवर श्री पुष्कर मुनिजी महाराज ने भी प्राकृत में स्तोत्र और निबन्ध लिखे हैं।

आचार्य श्री घासीराम जी

आचार्य घासीलालजी महाराज एक प्रतिभासम्पन्न सन्त रत्न थे। उनका जन्म संवत् १९४१ में जसवन्तगढ़ (मेवाड़) में हुआ उनकी माँ का नाम विमलाबाई और पिता का नाम प्रभुदत्त था। जवाहिराचार्य के पास आर्हती दीक्षा ग्रहण की। आपने बत्तीस आगमों पर संस्कृत भाषा में टीकाएँ लिखीं। और शिवकोश नानार्थ उदयसागर कोश, श्रीलाल नाममाला कोश, आर्हत् व्याकरण, आर्हत् लघु व्याकरण, आर्हत सिद्धान्त व्याकरण, शांति सिन्धु महाकाव्य, लोंकाशाह महाकाव्य, जैनागम तत्त्व दीपिका, वृत्तबोध, तत्त्व प्रदीप, सूक्ति सँग्रह, गृहस्थ कल्पतरु, पूज्य श्रीलाल काव्य, नागाम्बर मञ्जरी, लवजीमुनि काव्य, नव-स्मरण, कल्याण मंगल स्तोत्र, वर्धमान स्तोत्र आदि संस्कृत भाषा में मौलिक ग्रन्थों का निर्माण किया। तत्त्वार्थ सूत्र, कल्प सूत्र और प्राकृत व्याकरण आदि अनेक ग्रन्थ प्राकृत भाषा में भी लिखे हैं। अन्य अनेक सन्त प्राकृत भाषा में लिखते हैं।

आचार्य श्री आत्माराम जी

श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के प्रथम आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज प्राकृत संस्कृत के गहन विद्वान और जैन आगमों के तलस्पर्शी अध्येता थे। आपका जन्म पंजाब में हुआ, विहार क्षेत्र भी पंजाब रहा। प्रस्तुत लेख में विशेष प्रसंग न होने से आपकी प्राकृत रचनाओं के विषय थे अधिक लिखना प्रासंगिक नहीं होगा, पर यह निश्चित ही कहा जा सकता है कि आपने प्राकृत साहित्य एवं आगमों की टीकाएँ लिखकर साहित्य भण्डार की श्री वृद्धि की है। आपके शिष्य श्री ज्ञानमुनि भी प्राकृत के अच्छे विद्वान हैं।

तेरापन्थ सम्प्रदाय के अनेक आधुनिक मुनियों ने भी प्राकृत भाषा से लिखा है। 'रयणवालकहा' चन्दनमुनि जी की एक श्रेष्ठ रचना है। राजस्थानी जैन श्वेताम्बर परम्परा के सन्तों ने जितना साहित्य लिखा है, उतना आज उपलब्ध नहीं है कुछ तो मुस्लिम युग के धर्मान्धशासकों ने जैन शास्त्र भण्डारों को नष्ट कर दिया और कुछ हमारी लापरवाही से चूहों, दीमक एवं शीलन से नष्ट हो गये। तथापि जो कुछ अवशिष्ट है, उन ग्रन्थों को आधुनिक दृष्टि से सम्पादित करके प्रकाशित किये जायँ तो अज्ञात महान साहित्यकारों का सहज ही पता लग सकता है।

---

१ श्री चन्द्रकृत रत्न करण्ड

२ पाटण संघवी के—में जैन भण्डार की वि० सं० १४९७ की हस्तलिखित ताड़पत्रीय पोथी खण्ड २, पत्र ३००

३ (क) उपदेश पद मुनि श्री चन्द्रसूरि की टीका वि० सं० ११७४
(ख) गणधर सार्धशतक श्री सुमतिगणिकृत वृत्ति
(ग) प्रभावक चरित्र ९ शृंग वि० सं० १३३४
(घ) राजशेखरकृत प्रबन्धकोष वि० सं० १४०५

४ समदर्शी अचार्य हरिभद्र, पृ० ६

५ 'संकरोनाम भट्टो तस्स गंगा नाम भट्टिणी। तीसे हरिभद्दो नाम पंडिओ पुत्तो।' —कहावली, पत्र ३००

६ 'एवं सो पंडितगव्वमुव्वहमाणो हरिभद्दो नाम माहणो।'

७ प्रभावक चरित्र शृंग ९, श्लोक ८

८ जैन साहित्य संशोधक वर्ष १, अंक १

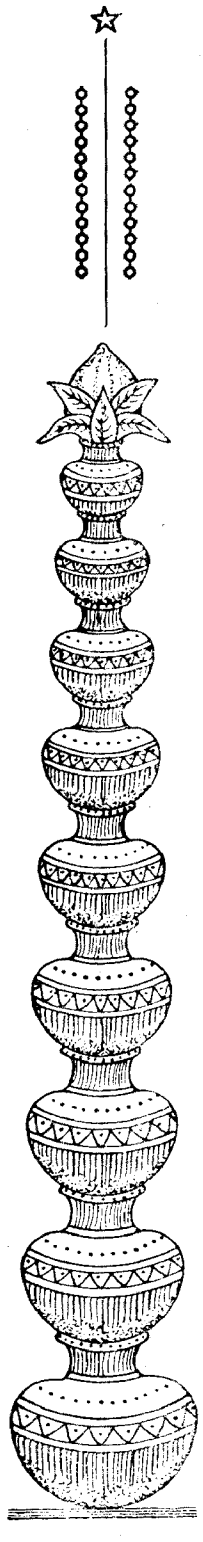

९ 'चक्किदुगं हरिपणगं, पणगं चक्कीणं केसवो चक्की ।
केसव चक्की केसव दु चक्की, केसी अ चक्की अ ।। —आवश्यक निर्युक्ति गाथा ४२१

१० 'धर्मतो याकिनी महत्तरा सूनुः —आवश्यक वृत्ति

११ सिंघी जैन ग्रन्थमाला भारतीय विद्याभवन बम्बई से प्रकाशित

१२ देखिए—डॉ० हर्मन जेकोबी ने समराइच्च कहा का सम्पादन किया, प्रो० सुवाली ने योगदृष्टि समुच्चय, योगबिन्दु, लोकतत्त्व निर्णय एवं षड्दर्शन समुच्चय का सम्पादन किया और लोकतत्त्व निर्णय का इटालिन में अनुवाद किया ।

१३ सिंघी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्याभवन बम्बई वि० स० २००५ मुनि जिनविजय जी

१४ तुणमलंघं जिण-भवण, मणहरं सावयाउलं विसमं ।
जावालिउरं अट्ठावयं व अह अत्थि पुहइए ।। —कुवलयमाला प्रशस्ति, पृ० २८२

१५ सुरसुन्दरीचरियं की अन्तिम प्रशस्ति गाथा २४० से २४८

१६ भगवती, ज्ञाता, समवायाङ्ग, स्थानाङ्ग, औपपातिक की वृत्तियों में प्रशस्तियाँ ।

१७ महावीरचरियं प्रशस्ति ।

१८ सम्पादक—अमृतलाल, सवचन्द गोपाणी, प्रकाशन-सिंघी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई संवत् १९४९

१९ दो पक्खुज्जोयकरो दोसासंगेणवज्जिओ अमओ ।
सिरि सज्जण उज्जाओ, अउवच्चं दुव्वअक्खत्थो ।।
सीसेण तस्स कहिया दस विकहाणा इमेउपंचमिए ।
सूरिमहेसरएणं भवियाण बोहणट्ठाए ।। —णाण १०।४९६–४९७

२० विधिप्रथा सिंघी जैन ग्रन्थमाला बम्बई से प्रकाशित ।

२१ प्रकाशक वही

२२ प्रकाशक—सिंघी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई

२३ प्रकाशक—वही

२४ नागउर—जिणायज्जणे समाणियं विवरणं एयं'
—धर्मोपदेशमाला, प्रशस्ति २९, पृ० २३०

२५ तीर्थङ्कर वर्ष ४, अंक १, मई १९७४

२६ मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि, अष्टक शताब्दी स्मृति ग्रन्थ 'जोइसहीर'—महत्त्वपूर्ण खरतरगच्छीय ज्योतिष ग्रन्थ लेख पृष्ठ ९५ ।

२७ (क) प्रभावक चरित्र, भाषान्तर, पृष्ठ १८७ । प्रकाशक—आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर वि० सं० १९८७ में प्रकाशित ।
(ख) जैन परम्परा नो इतिहास भाग १, पृ० ३५९ से ३६१

२८ मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी, स्मृति ग्रन्थ

☆☆

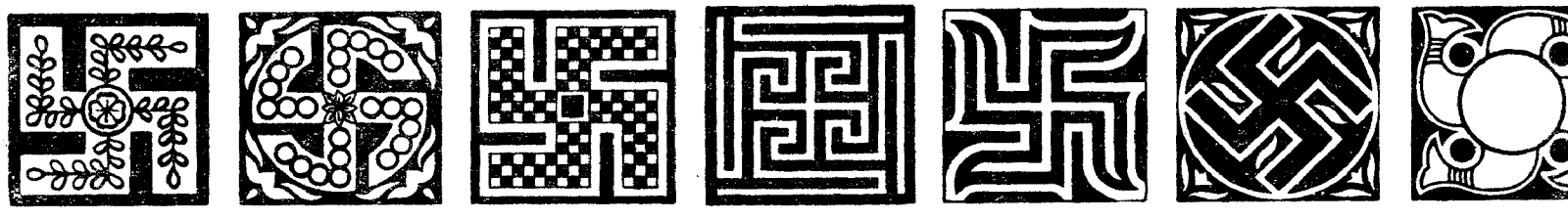

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org